International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

उपनिवेशवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था : एक तुलनात्मक अध्ययन

धीरेन्द्र सिंह
(शोध छात्र)
प्राचीन इतिहास संस्कृति, एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

किसी राष्ट्र के द्वारा किसी अन्य राष्ट्र के आर्थिक संसाधनों को अधिकृत कर उनका दोहन अपने मातृदेश के हित में करने की प्रक्रिया को उपनिवेशवाद की संज्ञा दी जाती है। भारत में भी कुछ इसी प्रकार के ब्रिटिश उपनिवेशवाद का एक लम्बा इतिहास रहा है, जिसमें समय के अनुसार बदली परिस्थितियों में भारतीय संसाधनों के दोहन के तरीके भले ही परिवर्तित होते रहे किन्तु शोषण का एक वीभत्स और कुत्सित रूप निरंतर जारी रहा।[1]

जहां तक भारत में उपनिवेशवाद के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव का प्रश्न है तो इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में काफी मतभेद हैं। यूरोपीय इतिहासकार इस सम्बन्ध में ''निरंतरतावादी दृष्टिकोण'' का प्रतिपादन करते हैं। इनका मानना है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारतीय अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा, जिससे भारत में निरंतर आर्थिक विकास, सामाजिक परिमार्जन तथा सांस्कृतिक विविधता का एक अनुपम संयोग का प्रस्फुटन सम्भव हो सका। पीटर जे0 मार्शल कहते हैं कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि इस विषय में जो व्यवस्था पहले से चली आ रही थी, कम्पनी भी उसी का हिस्सा बनकर रही। भारतीय अर्थव्यवस्था में यूरोपीय बाहरी नहीं बल्कि सामान्य

व्यापारियों की तरह रहे।[2] विलियम डैलरिम्पल के विचारों में भी इस बात पर ही प्रभावी ढंग से बल दिया गया है कि यूरोपीय विदेशी नहीं बल्कि भारतीय समाज का अंग बनकर रहे और अनेक यूरोपीय तो भारत में मुगल उमरा वर्ग की तरह रहते थे तथा भारतीय स्त्रियों से शादियां भी रचाते थे। इसलिए ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में फिट बैठती थी और सत्ता में आने के बाद भी कम्पनी के अधिकार सीमित थे।[3] अतः उपनिवेशवाद ने न तो भारतीय अर्थव्यवस्था को नकारात्मक ढंग से प्रभावित किया और न ही परिवर्तित, बल्कि इसने तो पुरातन व्यवस्था को ही चिरस्थायी बनाए रखने का प्रयास किया। क्रिस बेली के लेखन पर ध्यान देने पर दृष्टिगत होता है कि मध्यकाल में मुगल साम्राज्य अत्यन्त प्रभावशाली तथा केन्द्रीकृत नहीं था बल्कि इनसे ज्यादा महत्वपूर्ण मध्यमवर्ग था, यथा – जागीरदार, जमींदार, इजारेदार तथा बैंकर्स आदि। यह वर्ग स्थानीय और प्रांतीय स्तर पर शक्तिशाली था तथा मुगलों का ग्रामीण समुदाय पर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं था, बल्कि मुगल सरकार इन्हीं मध्यस्थ और अभिजन वर्गों के माध्यम से ग्रामीण समाज पर यिंत्रण रखती थी एवं राजस्व प्राप्त करती थी। चूंकि 16वीं – 17वीं शताब्दी में व्यापक आर्थिक विकास हुआ, जैसा कि एंगस मेडीसन बताते हैं कि 1700 ई0 में विश्व जी0डी0पी0 में भारत का 25 प्रतिशत हिस्सा था। इस व्यापक आर्थिक विकास में मध्यमवर्ग की भूमिका निसंदेह बहुत व्यापक थी। अतः इसके लाभ का एक बड़ा हिस्सा भी मध्यम वर्ग को मिला जिससे कि मध्यम वर्ग की शक्ति एवं महत्वाकांक्षाएं बढ़ गई किन्तु इससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में कई प्रकार के नये

अवसर उपलब्ध कराए तथा यूरोपियों से सम्पर्क स्थापित कर इसे विश्वव्यवस्था से जोड़कर इसमें पूंजीवादी तत्वों का प्रस्फुटन किया गया और भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाया गया।[4]

किन्तु यूरोपीय इतिहासकारों के इन तमाम कयासों के बावजूद जब हम उपनिवेशवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में भारतीय इतिहासकारों के दृष्टिकोण का गहनता से अवलोकन करते हैं तो उपर्युक्त धारणा के ठीक विपरीत हमें एक पतनोन्मुखी भारतीय अर्थव्यवस्था तथा उपनिवेशवाद का एक कुत्सित रूप साफ दृष्टिगत होता है। ब्रिटिश शक्ति के उदय ने न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया, बल्कि भारत को एक उपनिवेश बनाकर इसके आर्थिक संसाधनों का भरपूर दोहन किया, जिसे रजनीपाम दत्त ने अपनी पुस्तक ''इण्डिया टुडे'' में स्पष्ट तौर पर 3 चरणों में बताने का प्रयास किया है। प्रथम चरण (1757 ई0 से 1813 ई0) में भारत का वाणिज्यिक उपनिवेश बनाकर कम्पनी ने भारत में व्यापारिक एकाधिकार और राजस्व पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। दूसरे चरण में (1813–57) में भारत को औद्योगिक उपनिवेश के रूप में इस्तेमाल किया गया जहां से कच्चा माल प्राप्त किया जा सके और निर्मित माल बेचा जा सके अर्थात भरत को एक औपनिवेशिक बाजार के रूप में इस्तेमाल करने का काम किया गया। तीसरे चरण में (1857 – 1947) भारत को वित्तीय उपनिवेश बनाया गया जिसमें ब्रिटिश पूंजी का निवेश रेल, यातायात, परिवहन बैकिंग आदि क्षेत्रों में निवेश कर भारत का दोहन किया गया।[5]

भारतीय इतिहासकारों के अनुसार भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का पहला लक्ष्य व्यापार पर एकाधिकार अर्थात इनका लक्ष्य किसी अन्य अंग्रेजी, यूरोपीय या भारतीय व्यापारियों को भारतीय माल खरीदने एवं बेचने की प्रतिस्पर्धा से बाहर करवाया, जिससे कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को न्यूनतम मूल्य पर माल मिल सके और इसके द्वारा अधिकतम मूल्य पर माल बेचा जा सके। इस प्रकार भारतीय आर्थिक अतिरेक को व्यापारिक एकाधिकार द्वारा हड़प लिया गया। इसके लिए कम्पनी ने सरकार पर दबाव डालकर अंग्रेजी व्यापारियों को तथा युद्धों और षडयंत्रों के माध्यम से यूरोपीय व्यापारियों को प्रतिस्पर्धा से बाहर कर दिया गया, साथ ही भारतीय व्यापारियों पर एकाधिकार प्राप्त करने के लिए इन्होंने मुगल साम्राज्य के विघटन तथा क्षेत्रीय शक्तियों के उत्कर्ष से लाभ उठाया। सुशील चौधरी बताते हैं कि कम्पनी ने भारतीय हस्तशिल्प तथा व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया। भारतीय व्यापारियों को धीरे–धीरे प्रतिस्थापित और बर्बाद कर, कम्पनी के एजेण्ट बना दिया गया जबकि बुनकर और अन्य शिल्पकार अपना माल कम मूल्य पर बेचने को बाध्य किये गये, जिससे कि परम्परागत उद्योगों का तीव्र गति से पतन हुआ।[6] गुलाम हुसैन ने भी अपनी पुस्तक ''सियार–उल–मुत्खैरीन'' में कारीगरों की व्यापक बेरोजगारी को चित्रित किया है।[7]

कम्पनी का एक और महत्वपूर्ण लक्ष्य भारतीय राजस्व पर नियंत्रण करना था। अपनी राजनीतिक विजय और बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर कम्पनी ने सर्वप्रथम राजस्व पर नियंत्रण स्थापित किया। इसके बाद कम्पनी के

अधिकारियों और कर्मचारियों ने भारतीय शासकों, जमींदारों, अधिकारियों तथा व्यापारियों आदि से असीम धन वसूलना प्रारम्भ किया। साथ ही धीरे–धीरे भारत में मोटे वेतन वाले अंग्रेज अधिकारियों की भी नियुक्तियां की जाने लगी, जिसकी राशि भारतीयों पर ही देय थी। इरफान हबीब बताते हैं कि यहीं से ''धन की निकासी'' के लक्षण भी प्रस्फुटित हुए, जो कि 1757 में 8 लाख पाउण्ड आंका गया और 1780 में यह राशि बढ़कर 4 करोड़ पहुंच गयी गयी।[8]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उपर्युक्त तरीकों से भारत के आर्थिक हितों को प्रभावित कर धन कमाने की आवश्यकता क्यों पड़ी, इसके पीछे कई कारण विद्यमान थे। सर्वप्रथम तो अब कम्पनी को व्यापार एवं वाणिज्य के लिए भारत में बुलियन लाने की आवश्यकता नहीं रही। अब इन्हें भारत से ही पूंजी प्राप्त होने लगी, जिससे ये भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं को आसानी से खरीद सकते थे। ऐसा 1757 में प्लासी के यद्ध में विजय से ही प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु 1764 में बक्सर के युद्ध में विजय के बाद बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने के पश्चात यह प्रक्रिया और भी तीव्र हो गयी। इरफान हबीब ने सुझाया है कि इंग्लैण्ड से भारत जाने वाला बुलियन 1757 में 7 लाख पाउण्ड था जो कि 1760 में घटकर 1/2 लाख पाउण्ड ही रह गया। इसके अतिरिक्त यूरोपीय प्रतिद्वंदियों तथा भारतीय शासकों से युद्ध करने, नौसैनिक शक्तियों, किलों तथा सेना को अपने व्यापारिक स्थानों पर बनाए रखने और प्रशासनिक मशीनरी पर हो रहे खर्च की आपूर्ति के लिए इन्हें प्रचुर आर्थिक

संसाधनों की आवश्यकता थी और कम्पनी से अपने अधिकतम लाभ के लिए ये समस्त आर्थिक संसाधन भारत में ही जुटाने थे।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बंगाल में ब्रिटिश शक्ति के उदय का तथा इसे एक उपनिवेश में परिवर्तित करने का न केवल भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी व्यापक रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ा, जिसने भारतीय कृषि व्यवस्था, औद्योगिक प्रणाली तथा व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों के परम्परागत माडल को नेस्तनाबूद कर दिया और भारतीय जनजीवन को बद से बदतर स्थिति की ओर ढकेलने का काम किया।

संदर्भ ग्रन्थ

1. विपिन चंद्रा
   अ. भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास।
   ब. आधुनिक भारत का इतिहास।
2. पीटर जे0 मार्शल — East India Fortunes: The British in Bengal in the 18th Century.
3. विलियम डैलरिम्पल — The white Mughals
4. (अ) क्रिस बेली — Rulers, Townsmen and Bazaars: North Indian Society in the age of British Expansion (1780-1870)

(ब) एंगस मेडिसन World History by per capita GDP

5. रजनी पाम दत्त India Today

6. सुशील चौधरी Companies, Commerce and Merchants: Bengal in the pre-colonial era.

7. गुलाम हुसैन तबतबाई सियर–उल–मुत्खैरीन

8. इरफान हबीब Agririan Structure of Mughal